विपश्यना

साधकों का
मासिक प्रेरणा पत्र

बुद्धवर्ष २५३१ | आषाढ पूर्णिमा | ११ जुलाई १९८७ | वर्ष १७ | अंक १

धम्म वाणी

यदा असोकं विरजं असङ्खतं,
सन्तं पदं सब्बकिलेससोधनं ।
भावेति संञ्ञोजनबंधनच्छिदं
ततो रतिं परमतरं न विन्दति ।।
थेर गाथा ५२१.

जब कोई साधक शोक-विहीन, रजविहीन, असंस्कृत, क्लेश-शोधक परम शांत पद निर्वाण का साक्षात्कार कर उसे भावित करता है और इस अभ्यास द्वारा अपने संयोजन-बंधन तोड़ता है तब जिस परमानंद का अनुभव करता है उससे बढ़कर और कोई आनंद नहीं होता ।

विपश्यना ध्यान साधना

–नृसिंहदेव अरोड़ा

ध्यान योग में 'विपश्यना' ध्यान पद्धति का सर्वोपरि महत्व है । इससे हमारी प्रसुप्त चेतना के अनंत केंद्र सक्रिय हो जाते हैं जिससे जीवन की ऊर्जा (एनर्जी) कई गुना विकसित हो जाती है। सभी प्रकार के रोग व क्लेश इस पद्धति से ठीक हो जाते हैं और जीवन में संतोष व समता का उदय होता है । यहाँ तक कि शराब, अफीम, चरस, हशीश, हिरोईन आदि नशीले पदार्थों से भी छुटकारा मिल जाता है ।

योग विज्ञान के अनुसार तनावों की जड़ पूर्व संस्कारों से होती है । एक जन्म के संस्कार दूसरे जन्म में होते रहने के कारण प्राणी के अन्दर राग, द्वेष, भय आदि का उदय होता है । आज-कल के वातावरण में मनुष्य अपने को असुरक्षित मानकर सशंकित रहता है इस प्रकार वह तनाव की स्थिति बनी ही रहती है । फिर वही तनाव शरीर की नस नाड़ियों में तथा मानसिक भावनाओं व कुंठाओं में प्रकट होते हैं जो अधिक तीव्र होने पर भिन्न भिन्न प्रकार के मानसिक व शारीरिक रोगों तथा अन्य समस्याओं के रूप में अवतरित होते रहते हैं। इस प्रकार संसार के प्राणी सुखी नहीं हैं। यहाँ तक कि अमेरिका जैसे वैभवशाली व साधन-संपन्न देशों में, सारी लौकीय भौतिक सुख-सुविधा प्राप्त होते हुए भी वहाँ के लोग उद्विग्न, अतृप्त, उत्तेजित व तनाव-खिंचाव से युक्त जीवन जीते हैं । इसीलिए मानसिक शांति व आत्मिक सुख और यथार्थ जीवन पाने के लिए विश्व के स्त्री-पुरुष भारतीय ध्यान साधना की ओर आकर्षित हो रहे हैं ।

विपश्यना द्वारा ध्यानावस्था एवं एकाग्र चित्तावस्था की प्राप्ति होती है । इससे कम हवा में जीवित रहने, हृदय और नाड़ियों की गति धीमी पड़ जाने, रक्त का दबाव सामान्य हो जाने आदि सहज सम्भाव्य हैं । आर्य मौन (नोबल साइलेंस) को भी ऋषि-मुनियों ने बड़ा महत्व दिया है । वैज्ञानिकों ने अब इस बात की पुष्टि की है कि इन अवस्थाओं में शारीरिक क्रियाओं में पर्याप्त परिवर्तन होते हैं तथा शरीर की विद्युत को रोकने की क्षमता पर्याप्त मात्रा में बढ़ जाती है। साथ ही शरीर से विकीर्ण होने (फैलने) वाली तरंगों के गुण में भी परिवर्तन हो जाता है । इन परिवर्तनों से निश्चय ही विभिन्न अंगों का निदान व विकास करके संबंधित व्यक्ति की आयु में वृद्धि की जा सकती है । प्राचीन साहित्य में इस प्रकार के प्रसंग उपलब्ध हैं ।

विपश्यना के लिए दो पूर्व भूमिकाएँ अनिवार्य हैं । प्रथम शील अर्थात वाणी और शरीर से कोई ऐसा कर्म नहीं करें जिससे दूसरों की सुख-शांति भंग हो । दूसरी भूमिका मन को वश में करने की बात — समाधि है जो कि सांस द्वारा करते हैं। इनके साथ जब विपश्यना शुरू करते हैं तो वांछित फल की प्राप्ति हो जाती है । इसे करके देखिए । दुनिया मन का खेल है । मन शरीर में बसता है । यदि हम अपने शरीर को और मन को तथा उसकी क्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं को जान लें तो दुःख और अशांति से मुक्त होने का मार्ग हमें सहज ही मिल जाता है । शरीर और मन को जानने की श्रेष्ठ वैज्ञानिक पद्धति विपश्यना है । इसका अर्थ है शरीर को तटस्थ अन्तर्मन से देखना । जो सत्य है, यथार्थ है उसका यथाभूत साक्षात्कार करना । इस साक्षात्कार में जीवन का रहस्य मिल जाता है । विपश्यना का अर्थ है साक्षीभाव से, द्रष्टाभाव से देखना । शुद्ध सांस के नैसर्गिक आवागमन के प्रति सजग रहता हुआ साधक अपने मन को वश में करने का अभ्यास करता है और सहनशील बनता है । मन को वश में करने के साथ उसे निर्मल करने का भी काम शुरू होता है । क्योंकि सांस का मन से और मन के विकारों से गहरा संबंध है । विपश्यना द्वारा अपने आपको साक्षीभाव से देखने से जैसे जैसे मानस विकारों से विमुक्त होने लगता है वैसे वैसे उसे सद्गुण से भरना सहज हो जाता है ।

मैत्री, सद्भावना, प्यार, सहनशीलता, करुणा आदि निर्मल मन के नैसर्गिक गुण होते हैं। इस प्रकार शारीरिक स्तर पर वे सारे रोग, जिनका मन से संबंध है, बिना ही किसी डाक्टरी इलाज के अपने आप मात्र देखते देखते दूर हो जाते हैं। अर्थात साधक धीरे धीरे स्वस्थ होने लगता है। उसके व्यसन छूमन्तर हो जाते हैं। मन में धीरज और सहिष्णुता बढ़ती है। दूज का चांद जिस प्रकार से बढ़ता है और पूर्णिमाका चांद प्राणी मात्र को शीतलता देता है, उसी प्रकार विपश्यना साधना का क्रम है।

स्वस्थ होने का अर्थ, केवल बीमारी हट जाना या उसका दब जाना ही नहीं है, अपितु हमारा अपने चेतना-केन्द्र से संयुक्त हो जाना है। 'स्वास्मिन् स्थितः-स्वस्थः' अर्थात अपने आप में नित्य स्थित होने की दशा से स्वस्थ शब्द का वास्तविक अभिप्राय है। करीब छह-सात वर्ष पूर्व समाचार पत्रों में भारतीय आयुर्विज्ञान, दिल्ली के किसी डॉक्टर भटनागर की एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी। उन्होंने अपने पेपर में इस सम्भावना को अभिव्यक्ति की है कि सभी गंभीर रोगों की सही, सहज चिकित्सा समाधि-विज्ञान से की जा सकती है। इससे तथा विपश्यना से ऐसा आभास एवं अनुभव होता है कि औषधि (मेडिसिन)से ध्यान (मेडोटेशन) अधिक कारगर है। वास्तव में है भी ऐसी ही बात। इस संदर्भ में एक और लेख है। हिन्दू विश्व विद्यालय,वाराणसी के आयुर्वेद कालेज के प्रिंसिपल डॉ. उडप्पा एक सुलझे हुए ज्ञान-पिपासु चिकित्सक हैं। उन्होंने विपश्यना शिविर की बात सुनी तो अपने कई चिकित्सकों को शिविर में भेजकर अनेक साधकों की स्वास्थ्य-परीक्षा करवायी। साधना के पूर्व और पश्चात् की रिपोर्टों के आधार पर डॉ. उडप्पा ने घोषित किया कि विपश्यना-साधना नाड़ी दौर्बल्य को दूर करने, हृदय को स्वस्थ बनाने और रक्त चाप को ठीक करने के लिए उपयोगी है। इसी प्रकार मनीषी प्राकृतिक चिकित्सक डॉ. विट्ठलदास मोदी भी विपश्यना से इतने प्रभावित हैं कि वे नित्य प्रातः अपने चिकित्सालय, आरोग्य मंदिर, गोरखपुर (उ. प्र.) में आए स्वास्थ्यार्थियों को अपने साथ बैठाकर एक घंटे अभ्यास कराते हैं। और तो और, मेरी स्वयं की भी आश्चर्यजनक अनुभूति यही रही कि मार्च ८६ में जयपुर में दस दिन के शिविर के बाद से ६९ वर्ष की उम्र में अपने को ३९ वर्षीय स्वस्थ जवान सा महसूस करने लगा हूँ। वास्तव में जीवन के केन्द्र को पुन-र्स्थापित करने के लिए विपश्यना से बढ़कर अन्य कोई उपचार नहीं। इसीलिए इस वैज्ञानिक युग में सैकड़ों विदेशी भी विपश्यना ध्यान साधना के सहारे नया जीवन जी रहे हैं। विपश्यना का मूल प्रयोजन है–जो हो रहा है उसे सम्यक् रूप से देखना, अपने को साक्षीभावसे देखना और समता में स्थित रहना। विपश्यना द्वारा मनुष्य दिव्यता प्राप्त करता है और आगे बढ़ता हुआ जीवन-मुक्त अवस्था प्राप्त कर लेता है।

उपसंहार :

विपश्यना इसी क्षण में जीने का अभ्यास है, यथार्थ में जीने का अभ्यासक्रम है। शुद्ध शील-धर्म को जीवन में उतारने की विधि है। इसके द्वारा साधक स्वयं तो कृतकृत्य होता ही है, समाज व देश के लिए भी सुख-शांति का कारण बनता है। इस प्रकार विपश्यना मानव कल्याण की प्राचीनतम जीवन जीने की वैज्ञानिक कला है। भवतु सब्ब मंगलं !

चौक सौदागर मोहल्ला
अजमेर - ३०५००१

साधकों के उद्‌गार

जोधपुर की श्रीमती नर्वदा देवी लिखती है, "मैं सर्वप्रथम १९८० के अक्टूबर माह में जयपुर के शिविर में सम्मिलित हुई थी। गजब का तरीका है आत्मशुद्धि का–यह विपश्यना। तब से दिन में एक बार निरंतर साधना करती रही। १९८४ तथा ८५ में दो बार शिविर में भाग लिया। पर ८५ से दोनों समय नियमित साधना करनी शुरू की। सनातनी परिवार में जन्मी, आर्य समाज के संपर्क में आकर गायत्री-जप तथा हवन करने लगी। अद्वैतवादियों के संपर्क में आकर अजपाजप अथवा सोहम् में प्रवृत्त हुई थी परन्तु उसमें यह होता था कि श्वास पर ध्यान केन्द्रित होते होते शरीर के किसी भाग पर ध्यान केन्द्रित होता और फिर मुझे एक अपूर्व संवेदना का अनुभव होता और उसी में जी भरकर आनंद का अनुभव करने लगती। वह करते करते जब स्थूल वेदना प्रकट होती तो असह्य जलन, चुभन और पीड़ा होती थी। यहाँ तक कि यह वेदना तीव्र शारीरिक बीमारी का रूप ले लेती और मैं भोगती रहती। रातों की नींद उड़ जाती, भूख बंद हो जाती और मैं साधना छोड़ देती। फिर कुछ दिन बाद शुरू करती तो फिर वही हालत। इस तरह जीवन की गाड़ी चल रही थी। डाक्टरी दवा इसलिए नही करती थी कि स्व. पथप्रदर्शक ने कहा था कि साधना से उत्पन्न बीमारी का इलाज नहीं कराते। १९७६ से प्राकृतिक चिकित्सा करती थी। बीकानेर के प्राकृतिक चिकित्सक ने सलाह दी कि सांस को जोर से न लेकर सहज स्वाभाविक रूप से श्वास को मात्र देखा करो। पर कोई अन्तर नहीं पड़ा। बहन तथा शुभचिंतक कहते, 'यह बीमारी तुम खुद पैदा करती हो, ऐसी साधना किस काम की ?' परन्तु तब तक मेरी जलन व चुभन स्थाई रोग बन चुकी थी। अन्ततः १९८० में श्री सरदारमल दुगड़ के संपर्क में आई। तीन महीने उनकी प्रा. चि. लेते रहने पर एक दिन उन्होंने पूछा 'कोई आध्या-त्मिक साधना भी करती हो ?' मैंने अपनी कथा बताई। उनकी सलाह से अब आपके संपर्क में आकर धन्य हुई हूँ।

जहाँ मैंने स्थूल संवेदना को भोगना छोड़ा वहीं वह पिघलकर समाप्त हो गई। सूक्ष्म संवेदना का रस लेना छोड़ा तो वह स्थूल में परिवर्तित होनेसे रह गई। विश्वास नहीं होता कि अनुभूतियों के प्रति द्रष्टाभाव रखकर कष्टों के भोग से छुटकारा पाया जा सकता है। आप के मार्गदर्शन में समता में रहना जान लिया। अब तक तो केवल मानती थी, जानती नहीं थी। आपके अनंत उपकार के प्रति अत्यंत कृतज्ञ हूँ। ऐसे ही सबका मंगल हो।"

❀

गोरखपुर से श्रीमती उर्मिला खेतान लिखती हैं, "पिछले मास अक्टूबर में कुशीनगर मे लगे 'विपश्यना शिविर' में आचार्य डॉ. विठ्ठलदास मोदी की प्रेरणा से सम्मिलित हुई। इससे पहले मैंने 'विपश्यना' का नाम भी नहीं सुना था। लेकिन वह शिविर के दस दिन मेरे जीवन के लिए अद्वितीय रहे, जिसकी कि इस रूप में कल्पना भी नहीं की थी। जीवन के पचास वर्षों में श्वास का आवागमन तो चलता ही रहा, परन्तु आज तक यह नहीं मालूम था कि श्वास कब आती है, कब जाती है। क्रियाएँ वही, मात्र उनके प्रति अवेयरनेस और तज्जनित अनुभूतियाँ।

शिविर के बीते दस दिनों में कभी जिज्ञासा, कभी कौतूहल, कभी भय, कभी सिहरन, कभी उकताहट, कभी अथाह पीड़ा एवं कभी अकथनीय थकावट के बीच डोलती रही। विपश्यना की नाजुक यात्रा से मन एकदम डावाँडोल जैसा हो जाता, ठीक वैसे ही, जैसे कि आपरेशन के पहले किसी रोगी का। इस कल्पना मात्र से सिहर उठती कि माइंड खुलने पर कहीं सीरियस डिक्लेयर हो गया तो लाईलाज घोषित होकर घर वापस कर दी जाऊंगी। बहरहाल ऐसा कुछ नहीं हुआ।

विपश्यना लेते समय मन की जो स्थिति अथवा जिन अनुभूतियों से गुजरी उनको भाषा देना मेरे वश की बात नहीं है। शब्द इतने सीमित हैं, इतने असमर्थ हैं कि चाहते हुए भी अपने भावों को व्यक्त नहीं कर पा रही हूँ। मनोदशा अवर्णनीय है।

विपश्यना करने पर शारीरिक स्तर पर बहुत थकान अनुभव करने लगती हूँ, लगभग मूर्छित जैसी अवस्था। जैसे मीलों की यात्रा के पश्चात् पावों की हालत होती है। एक डग भी आगे न बढ़ा जाता हो, एकदम डगमगाहट जैसी। मानसिक स्तर पर हर समय झनझनी सी मालूम होती रहती है। कोलाहल से जी घबराने लगता है। व्यवहार जगत में अपने को अनफिट जैसा फील करने लगती हूँ। इस ऊहापोह में अनेक शंकाएँ जन्म लेती हैं। इससे तो अधिक उपयुक्त विपश्यना शिविर के पहले ही थी। वहाँ जाकर क्या मिला? इस पर घंटो मनन करती रह जाती हूँ पर कोई हल समझ नहीं पाती। मन बड़ा ही व्याकुल हो उठा है इस सजगता से। क्या करूँ? कृपया कोई उपाय बताइए। आपकी अत्यंत व्यस्तता को समझते हुए भी दिशा-निर्देश की अभिलाषी हूँ। आपकी मंगल मैत्री की भी आकांक्षी हूँ और कभी आपके सान्निध्य की भी।"

उत्तर : तुमने विपश्यना द्वारा अपने भीतर की सच्चाईयों के प्रति जागरूकता तो बढ़ाई पर समता बढ़ाना भूल गई। लगता है विपश्यना का वह महत्वपूर्ण पक्ष छुआ ही नहीं। अब उसे महत्व दो। शरीर और मन से संबंधित सभी अनुभूतियों के परिवर्तनशील स्वभाव को समझते हुए समता पुष्ट करो। सारी कठिनाइयाँ दूर हो जायेंगी। जब जब समता स्थिर न हो तब तब थोड़ी सी देर के लिए आनापान कर लिया करो। इससे बल मिलेगा।

स. ना. गो.

❀

धर्मसेवा का अनूठा आनंद

—केसर शाह

किसी पुण्यशाली को ही धर्मसेवा करने का अवसर प्राप्त होता है। आज मैं अपने आपको कितनी भाग्यशाली मानती हूँ कि धर्मसेवा करने का अवसर आया तो मन से सारी हिचकन, सारा संकोच हटाकर सेवा को अपना सकी।

कुछ वर्षों पूर्व जब शुरू में विपश्यना शिविर में आयी तो देखा कि दूर दूर से आए हुए विदेशी भाई/बहन ही कितनी लगन से ओतप्रोत होकर धर्मसेवा कर रहे थे. तभी मन में प्रेरणा हुई कि हम भारतीय साधक भी क्यों न इस सेवाकार्य में अपना हाथ बटाएँ! लेकिन फिर मन सकुचाता रहा। हमसे सेवाकार्य कैसे हो सकेगा? लोग हमारे लिए क्या सोचेंगे? यों समय बह गया।

एक बार हैदराबाद में शिविर लग रहा था। विदेशी साधक सेवाके लिए तैयार थे। उनके साथ कुछ हिन्दीभाषी धर्म-सेवकों की जरूरत थी। पूज्य गुरूजी ने मुझे सेवा में रहने को कहा पर मुझमें जागा हुआ संकोच देखकर बोले, "विशाल वृक्ष बनो, नहीं तो नर्सरी का पौधा बनकर ही रह जाओगी।" पूज्य गुरूजी के ये मर्म-भेदी वचन बड़े ही प्रेरणादायी रहे। मेरे संकोच का आवरण हटा और मैं सेवा में लग गई।

और आज देखती हूँ कि धर्मसेवा का कार्य कितना महान है! हमें कितना धन्य बनाता है! भिन्न भिन्न देशों से आए, भिन्न भिन्न विचारधारावाले साधकों के संपर्क में हम आते हैं तो हृदय विशाल बनता है। परायापन रहता ही नहीं। बस प्यार ही प्यार उमड़ता है। अगर इस पुण्यमयी सेवा से वंचित रहती और संकोच की बाड़ में कैद रहती तो सचमुच "नर्सरी का पौधा" बनकर रह जाती।

हाँ, धर्मसेवा का कार्य कठिन अवश्य है। मेहनत करनी होती है। लेकिन शिविर समापन के दिन जब साधकों के प्रफुल्लित चेहरे की मधुर मुस्कान देखती हूँ तो सारी थकान दूर हो जाती है। इतना ही नहीं बल्कि आगे फिर धर्मसेवा के लिए नई चेतना का संचार हो जाता है। बड़ी ही बलदायिनी है धर्मसेवा। प्रत्येक क्षण को आनंद से भर देती है।

घर में केवल एक कुटुम्बका प्यार मिलता है पर यहाँ तो मैत्री, प्यार, करुणा और मुदिता की तरंगों में जीवन फैलता हुआ महसूस करती हूँ। यह अनुभव केवल मेरा ही नहीं, जो भी सेवा करके गए वे यही कहते हैं— "सेवा में कितना आनंद आया!"

विपश्यना के इस विशाल कुटुम्ब में देखती हूँ कि सेवा की कितनी जरूरत है! इसमें तरह तरह के अनेक काम करने हैं। और सोचती हूँ कि निश्चय ही धर्म में पुष्ट ऐसे अनेक साधक-साधिकाएँ हैं जिनके लिए धर्मसेवा का काम करने की अनुकूलता भी होगी, लेकिन वे मेरी ही भांति संकोच के कारण अपने कदम नहीं उठा पाते होंगे। उनके लिए मेरा नम्र प्रस्ताव है कि मेरे प्यारे भाई-बहनो! धर्मसेवा का यह अमूल्य अवसर हाथ से न

जाने दें और अपने आपको सेवा के आनंदमय मांगल्य से भर लें! सेवा की पुण्य-पारमिता का अपना घड़ा भर लें !

सब का मंगल हो !

देहावसान

पूना के प्रसिद्ध जिसूईस्ट पादरी श्री एन्थोनी डि-मेलो का अभी पिछले दिनों अमेरिका में एकाएक हृदयगति रुक जाने से देहावसान हुआ। श्री एन्थोनी भारत ही नहीं, विश्व भर के अनेक देशों के पादरी नेता एवं ईसा मसीह के उपदेशों के प्रबुद्ध प्रचारक थे, उच्च कोटि के वक्ता और लेखक थे। धर्म के सांप्रदायिकता-विहीन स्वरूप के प्रति उन्हें बहुत आकर्षण था। इसीलिए उन्होंने संप्रदाय-निरपेक्ष विपश्यना साधना स्वयं सीखी और मार्च १९७४ में खण्डाला के सेंट मेरी चर्च में भारत के ७८ प्रमुख ईसाई पादरियों के लाभार्थ एक विपश्यना शिविर लगवाया जिससे सभी लाभान्वित हुए। इसी के परिणाम स्वरूप हर वर्ष बड़ी संख्या में ईसाई पादरी और साध्वियाँ विपश्यना साधना शिविर में आते रहते हैं। उन्होंने सियाटल, (अमेरिका) की एक ईसाई महिला लोरी रॉश को कुछ समय पूर्व ही उसके पत्र का उत्तर देते हुए लिखा था, 'यह निर्विवाद है कि विपश्यना साधना का ईसाई शिक्षा से पूर्णतया तालमेल बैठता है। दोनों में परस्पर कहीं कोई विरोध नहीं है, बल्कि इसके विपरीत सत्य तो यह है कि विपश्यना साधना करके कोई व्यक्ति अच्छा ईसाई बन सकता है। तुम्हारे अपने अनुभव ने ही तुम्हारे लिए यह सिद्ध किया है।"

दिवंगत पादरी श्री एन्थोनीजी की सद्गति के लिए विपश्यना-परिवार की समस्त मंगल मैत्री !

आवश्यकता है–

'विपश्यना' पत्रिका की वितरण-व्यवस्था एवं पतों को व्यवस्थित करने के लिए एक लिपिक (क्लार्क) की आवश्यकता है। अंग्रेजी टाईपिंग के जानकार अनुभवी व्यक्ति को प्राथमिकता दी जायेगी। कृपया अपेक्षित वेतन सहित निम्न पते पर आवेदन करें :–

व्यवस्थापक, विपश्यना विशोधन विन्यास, (प्रकाशन विभाग)
धम्मगिरि, इगतपुरी –४२२४०३.

दोहे धरम के

उलझे मन की गांठ में, दुखी हुए सब लोग।
मन की गांठें सुलझती, विपश्यना के योग॥

केवल बुद्धि विलास से, मुक्त हुआ ना कोय।
ज्ञान-चक्षु जिसके खुले, सहज मुक्त है सोय॥

चर्म-चक्षु से देखते, दर्शन भ्रामक होय।
जागे प्रज्ञा-चक्षु जब, दर्शन सम्यक् होय॥

निज अनुभव से जान ले, भले बुरे का ज्ञान।
करे पराक्रम धर्म-तप, सधे अमित कल्याण॥

मा बापू प्रिय बन्धु जन, स्वजन सनेही मीत।
सभी चाख लें धरम रस, ऐसी उमड़ी प्रीत॥

जब परहित सेवा करे, धर्म सुमन खिल जाय।
जब निज हित सेवा करे, धर्म सुमन मुरझाय॥

दूहा धरम रा

बढ़तो ही बढ़तो र' वै, अन्तर दुख परपंच।
ग्यान चक्खु सूं देखतां, दुक्ख र' वै ना रंच॥

बारै बारै भटकतां, उलझण बढती जाय।
भीतर कर्यां बिपस्सना, ग्यान चक्खु खुल जाय॥

दुख सुख का कारण कठै? बारै ढूढै मूढ़।
भीतर करयाँ बिपस्सना, प्रगटै कारण गूढ़॥

भोगत भोगत भोगताँ, बंधन बँधे अनेक।
बिपस्सना सूँ देखताँ, र' वै न दुख की रेख॥

दुख चक्कर भीतर चलै, मूढ सकै ना देख।
ग्यान चक्खु जीं का खुल्या, साँच सकै बो देख॥

देखै अपणै आप नै, समझै अपणो आप।
ज्यूं ही आपो जाणग्यो, त्यूं छुटग्या भवताप॥

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास
बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली–११० ००७
की मंगल कामनाओं सहित

विपश्यना विशोधन विन्यास के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२ ४०३. दूरभाष ८६
आषाढ पूर्णिमा * मुद्रण स्थान : विपश्यना प्रेस, धम्मगिरि, इगतपुरी. दूरभाष : ७६, १७६ * July 87

वार्षिक शुल्क रु. १०/–
आजीवन शुल्क रु. १००/–

'विपश्यना' रजि. नं. 19156/71
पोस्टल रजि. नं. NS(M) 16/87

Licence No. NS 18
to post without prepayment

प्रेषक :
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२ ४०३
(जि. नासिक, महाराष्ट्र, मध्य रेल्वे)